'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ३८ | वाराणसी, मंगलवार, ३१ मार्च, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

स्वागत-प्रवचन

जगभला (मध्य सौराष्ट्र) ३-१२-'५८

ग्राम-स्वराज्य की घोषणा करें

मैं आज आप ही लोगों के लिए बोल रहा हूँ। आज आपके यहाँ दूसरे गाँवों के लोग आये हैं। आप उन्हें खिलायें-पिलायें और साथ-ही-साथ ग्रामदान का विचार भी समझायें! ग्रामदान से डरने की जरूरत नहीं है। वह तो डर से मुक्त करनेवाला है, अभय देनेवाला है। समाज की वर्तमान स्थिति बहुत भयानक है। उस स्थिति को कायम रखने के लिए प्रयत्न अपेक्षित हो जाता है। हम भयानकता से, कृत्रिमता से मुड़कर स्वभाव की ओर लौटें। उसमें कौन-सा श्रम करना पड़ता है?

कितने पुरुषार्थ के बाद देश आजाद हुआ है। अब हम सुख बढ़ा सकते हैं और दुःख भी। सुख-दुःख बढ़ाना अपने पर ही निर्भर करता है। अच्छे प्रयत्न किये जायँगे तो स्वराज्य सुखकर सिद्ध होगा। अच्छे प्रयत्नों से ही राष्ट्र-निर्माण का काम होता है। प्रयत्नों में कमी रहे तो राष्ट्रीय विकास नहीं हो पाता। अभी विकास कहाँ हो पा रहा है? गाँवों में कितनी परेशानियाँ हैं? इसलिए जिस तरह हममें स्वराज्य पाने की तीव्र आकांक्षा थी, उसी तरह ग्राम-स्वराज्य पाने की आकांक्षा भी उत्पन्न होनी चाहिए।

सरकार का मुँह न ताकें!

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद दो-दो पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं, तीसरी पर अब विचार चलने लगा है। फिर भी देश की दरिद्रता नहीं मिट सकी है। आज भी हजारों-लाखों को भरपेट भोजन नहीं मिलता। पर्याप्त वस्त्र नहीं मिलता। यह कैसी भयानक बात है! विज्ञान के युग में इन समस्याओं के निराकरण के लिए दस वर्ष का समय मिल जाना कम नहीं है। अगर यही स्थिति दूसरे देशों में होती तो अब तक कुछ-का-कुछ हो गया होता। हम अपने दुःख सरकार के समक्ष रखकर यह आशा करें कि वे मिट जायँगे तो यह निरा भ्रम है। दादाभाई नौरोजी भी पहले अंग्रेज सरकार के सामने जनता के दुःख प्रस्तुत किया करते थे। और वे उन दुःखों को दूर करवाने की कल्पना किया करते थे, लेकिन उससे हुआ कुछ नहीं। वह सारी कल्पना ही रह गयी। इसीलिए बाद में स्वराज्य की उपयोगिता ध्यान में आयी। वही स्थिति आज भी है। हमारे दुःख ग्राम-स्वराज्य से ही मिट सकते हैं। ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

ग्राम-स्वराज्य का अर्थ वर्तमान शासन को बदलकर दूसरे नये शासन की स्थापना करना नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है—पूरे गाँव की व्यवस्था गाँववाले ही करें! स्वयं गाँववाले ही ऐसी योजना बनायें, जिससे गाँव के समस्त लोग संतुष्ट रह सकें। अब आप लोगों को संकल्प करना है। इसमें आपको सरकारी मदद भी मिलेगी। क्योंकि आखिर आज सरकार किसकी है? विदेशी सरकार आपके हित-विरोध में लगी रहती थी। लेकिन अपनी सरकार अपना हित-विरोध कैसे कर सकती है? सरकार से जितनी भी हो सके, मदद मिलेगी। मदद देनी सरकार का फर्ज है। लेकिन फिर भी लोग अपने पाँव पर खड़े होकर ग्राम-स्वराज्य की घोषणा करें, यही अभीष्ट है।

ग्राम-स्वराज्य का आधार

ग्राम-स्वराज्य के लिए सारी जमीन गाँव की बना देनी चाहिए। जब तक जमीन के अलग-अलग मालिक बने रहेंगे, तब तक जमीन गाँव की नहीं बनेगी। फिर गाँव का उत्थान कैसे होगा? ग्रामदान का सही अर्थ इतना ही है कि गाँव की जमीन गाँव-सभा की हो। फिर समान रूप से उसका आपस में वितरण कर लिया जाय। जिनके पास वर्षों से अधिक जमीन रहती आयी है, उन्हें प्रारंभ में कुछ अधिक जमीन दी जाय। फिर धीरे-धीरे उन्हें भी सर्व-साधारण की भाँति शरीर-श्रम के आधार पर खड़े होने की स्थिति में लाया जाय। शुरू-शुरू में उनपर ज्यादा दबाव नहीं पड़ना चाहिए। शेष जमीन भूमिहीनों में वितरित कर दी जाय। गाँव में कोई भी आदमी बेजमीन नहीं रहना चाहिए।

कोई बेकाम भी नहीं रहना चाहिए। जमीन से सबको काम दिया जा सके तो देना चाहिए, अन्यथा ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए। गाँव का कपड़ा, तेल, गुड़, जूता आदि सभी चीजें गाँव में ही बननी चाहिए। गाँव के लिए ऐसी कौन-सी चीजें चाहिए, जिन्हें बाहर से मँगवाना पड़ता है और गाँव में ऐसी कौन-सी चीजें हैं, जिन्हें बाहर भेजने की जरूरत है। इस सम्बन्ध में भी गाँववाले लोगों को मिलकर निर्णय करना चाहिए। सारी वस्तुओं के आयात-निर्यात के लिए गाँव की एक सहकारी दूकान होनी चाहिए।

शिक्षण के क्षेत्र में भी गाँव को परावलंबी नहीं रखना चाहिए। उसके लिए भी अपनी एक स्वतन्त्र योजना तैयार कर लेनी चाहिए। गाँव के झगड़े गाँव से बाहर न जायँ, गाँव में ही उनके फैसले हों, यह आवश्यक है। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

कुन्तासी (मध्य सौराष्ट्र) २-१२-'५८

सब समस्याओं का एकमात्र समाधान : ग्रामदान

हमारे देश में शहर कम हैं, देहात अधिक। शहरों में काफी वैभव है और देहातों में है काफी विपन्नता। शहरों की भाँति बड़े-बड़े विद्वान, स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटियाँ तथा बृहद् पुस्तकालय आदि कुछ भी गाँवों में नहीं है। फिर भी वहाँ एक ऐसी चीज है, जिसके बल पर हम ताकत प्राप्त करते हैं। वह चीज है पारस्परिक प्रेम-संबंध! बड़े-बड़े शहरों में कोई किसीको पहचानता ही नहीं। एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी के प्रति बिलकुल लापरवाह है। इसके विपरीत गाँव के एक-एक घर में कब क्या चल रहा है, इससे समस्त गाँववाले परिचित रहते हैं। यही पारस्परिक परिचय गाँवों को टिकाये हुए है।

शहरों का गाँवों पर आक्रमण

आजकल गाँवों पर शहरी मनोवृत्तियों का आक्रमण हो रहा है। देहातवाले भी शहरवालों का अनुकरण करने लगे हैं। शहरी व्यसन अब देहात में भी स्थान पा रहे हैं। कौन-सी ऐसी बुराई है, जिससे अब देहात बिलकुल अच्छे रह गये हैं। चाय-पान, बीड़ी-सिगरेट आदि सभी वस्तुओं का प्रचलन इन दिनों देहातों में होने लगा है। गाँव के बच्चों के लिए शहरों से खिलौने मँगाये जाते हैं। खाने की विभिन्न चीजें भी बाजारों से खरीद कर लायी जाती हैं। इससे देहात की लक्ष्मी बाजार में चली जा रही है। गाँव के बड़े लोग शहरवालों का अनुकरण करते हैं और बड़े लोगों का अनुकरण करते हैं छोटे लोग। एक-दूसरे के पीछे आँख मूँदकर चले जा रहे हैं।

शहर में जो व्यापार चलता है, वह देहातों में नहीं चलता, इसीलिए देहातों में पैसा जोड़ना संभव नहीं होता। पैसा जोड़ने के फेर में पड़कर आदमी धीरे-धीरे गाँवों से अलग होते जा रहे हैं। आरम्भ में उनके परिवार के कुछ सदस्य गाँवों में रहते हैं और कुछ शहर में। फिर धीरे-धीरे गाँवों से हटकर पूरी तरह से शहर में जा बसते हैं। खेती-बाड़ी के कारण उनका कुछ संबंध गाँवों से रहता है। पर अन्ततः वह भी अस्थायी होता है। इस प्रकार पढ़े-लिखे, समझदार और काम करनेवाले लोग शहरों की ओर चले जा रहे हैं। इससे गाँवों की शक्ति क्षीण होती जा रही है। गाँवों की मुख्य शक्ति है प्रेम। वह भी अब कम पड़ने लग गया है। जब हम प्रेम को ही खो देंगे तो गाँव में रह क्या जायगा? देहातों की वर्तमान स्थिति में परिवर्तन न लाया गया तो अब निकट भविष्य में ही गाँवों के नष्ट होने की आशंका उत्पन्न हो गयी है। सभी देहात शहरों के पंजे में चले जायँगे।

गाँव कैसे टिकेंगे?

व्यापारी, वकील, साहूकार तथा सरकारी नौकरों के हमले तो देहातों पर होते ही रहते हैं। इसलिए अगर अब भी सभी गाँववाले अलग-अलग ही रहकर 'अपनी डफली अपना राग' अलापते रहेंगे तो वे किसी भी हालत में टिक नहीं सकेंगे। उनके टिकने के लिए यह आवश्यक है कि वे एक-दूसरे के साथ सहकार करें। प्रेम और सहकार का ही नाम ग्रामदान है।

बहुतों के सामने प्रश्न खड़ा होता है कि "ग्रामदान के बाद आलसी आदमियों का कैसे चलेगा? उनके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व गाँव पर ही आ पड़ेगा तो उससे बचने के लिए क्या किया जायगा? आज तो 'उनका नसीब' कहकर यह प्रश्न टाल दिया जाता है। उनकी चिंता गाँववालों को नहीं है। अधिक-से-अधिक घरवालों पर ही उनका भार रहता है, लेकिन फिर कैसे चल सकेगा?" इसपर मैं कहना चाहता हूँ कि जिस प्रकार आलसी बच्चों के साथ घरवालों का व्यवहार होता है। उसी प्रकार गाँववालों का भी उनके प्रति व्यवहार होना चाहिए। यदि नैतिक ताकत उत्पन्न हो तो फिर उन्हें सुधारने का भी प्रयत्न करना चाहिए। मनोवैज्ञानिक तरीकों से उनमें परिवर्तन लाया जाना संभव है।

लोगों में अनेक प्रकार की दुर्बलताएँ होती हैं। उन दुर्बलताओं से ऊपर उठाने के लिए नरसिंह मेहता जैसे भक्तों की जरूरत है, जो ऐसा कह सके कि 'गाँव का भला ही मेरा ध्येय है। दूसरा कोई ध्येय, कोई उदात्त आदर्श मेरे सामने नहीं है।' लोग कहते हैं कि ऐसे लोग नहीं मिलते, लेकिन मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। रावण की लंका में विभीषण निकला तो क्या गाँव में ऐसा कोई नहीं निकलेगा? अवश्य निकलेगा। वैसे ही व्यक्ति गाँववालों को धर्म के वचन, भागवत और पुराण सुनायें। भक्ति मार्ग शुरू करें तो आलस्य, व्यसन अनियंत्रितता आदि दुर्गुणों से बचा जा सकता है। विद्यार्थियों से यह काम नहीं हो सकता। वहाँ पढ़ना-लिखना आ सकता है। लेकिन चरित्र-निर्माण तथा दोष-निराकरण करने का ढंग आना वहाँ संभव नहीं है। उसके लिए तो हर गाँव में श्रवण, कीर्तन ही रहना चाहिए। रात में सभी लोग इकट्ठे होकर कुछ-न-कुछ सुनें, विचार करें तो सहज ही सुधार का काम हो सकता है। भगवान ने हरएक के हृदय में सद्भावनाएँ रखी हैं। उन्हें जगाने के साधन भी प्रस्तुत किये हैं। इसलिए उन साधनों का इस्तेमाल किया जाय।

आलसियों का सवाल कोई बड़ा सवाल नहीं है। यदि हम ऐसे ही सवालों में उलझे रहते तो न तो बुद्धि का विकास ही हो पाता और न स्वराज्य ही मिल पाता। अब स्वराज्य मिल गया, फिर भी गाँवों को स्वराज्य नहीं मिला है। वहाँ तो इस समय भी पहले जैसा ही पारतंत्र्य छाया हुआ है। गाँवों की स्थिति में क्या अन्तर पड़ा? दिल्ली पर पहले लन्दन की सत्ता थी, वह हट गयी। लेकिन गाँवों के सिर पर अभी भी सत्ता कायम है। जब तक यह सत्ता दूर नहीं होती, तब तक लोगों में स्वातंत्र्य-भावनाएँ प्रबुद्ध नहीं हो सकतीं और न स्वतन्त्र बुद्धि का विकास ही हो सकता है। इसलिए अब आपको ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के हेतु गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। ग्राम-स्वराज्य की प्राप्ति के पश्चात् ही गाँवों के आलसी तथा दुर्जनों की समस्याओं का समाधान हो सकता है। अगर कुछ काल्पनिक समस्याएँ उत्पन्न करके इस नये विचार को पीछे ढकेल देंगे तो विज्ञान-युग से फायदा नहीं उठाया जा सकेगा।

नयी व्यवस्था से डर क्यों?

मानव को नयी व्यवस्था से कुछ डर-सा प्रतीत होता है। पुरानी व्यवस्था में दुःख होने पर भी 'नयी व्यवस्था न जाने कैसी होगी' यही सोचकर भय लगता है। नागपुर जेल से जब हम लोगों को वेलूर जेल भेजा गया तो साथियों को बड़ा विचित्र-सा लगने लगा। सभी सोचने लगे कि यहाँ (नागपुर में) तो अपना घर, अपनी भाषा और अपना प्रदेश है, पर वेलूर में सभी कुछ पराया है। वहाँ न जाने कैसी बीतेगी? लेकिन

वस्तुतः वेल्लूर में हमें नागपुर से अधिक अनुकूलताएँ रहीं। वहाँसे पुनः नागपुर जेल में परिवर्तित किये जाने के अवसर पर फिर वैसा ही लगा। इस तरह मनुष्य आज की असुविधाएँ तथा आनेवाली सुविधाओं की ओर ध्यान नहीं देता, किंतु आनेवाली असुविधाओं के बारे में सोचकर परेशान हुआ करता है। इसका मूल कारण नयी परिस्थितियों से अपरिचित होना ही है।

व्यक्तिगत मालकियत में जितना भय है, वास्तव में उतना भय सामूहिक मालकियत में नहीं है। खास करके जमीन जैसी वस्तु के लिए तो भय के लिए गुंजाइश ही नहीं है। जमीन में अन्न पैदा होता है और अन्न हम सभी लोग खाते हैं, अतः जमीन पर सारे राष्ट्र का अधिकार होना चाहिए। वह ऐसी चीज नहीं है कि आज है और कल मिट जायगी। अगर जमीन के मालिक चन्द लोग ही रहेंगे तो समस्त जनता कैसे कह सकेगी कि 'यह भारत देश हमारा है'। करोड़ों भूमिहीनों की सम्यक् व्यवस्था नहीं की जायगी तो वे लोग अपनी मातृभूमि की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए मर मिटने की तैयारी क्यों करेंगे? वेद कहते हैं कि 'माता भूमिः, पुत्रोऽहं पृथिव्याः' भूमि हमारी माता है, हम सभी इसके पुत्र हैं। इसलिए भूमि पर सभीका समान अधिकार होना चाहिए।

आज हम लोग अछूतों और भूमिहीनों की अत्यन्त उपेक्षा करते हैं। उन्हे हम अधिकारों से भी वंचित रखते हैं, जो मानवता के नाते उन्हें मिलने चाहिए। तब वे ही लोग संकट-काल में हमारा साथ कैसे देंगे? इसलिए हमें छूआछूत के भेद मिटाने होंगे और मिटानी होगी वैयक्तिक मालकियत। वैयक्तिक मालकियत मिटाने में अब किसी प्रकार का भय नहीं है, है तो सिर्फ अभय।

निमंत्रित नागरिकों के बीच

ग्रामदानी गाँव में व्यवस्था-स्वातन्त्र्य

आजकल जनसंख्या बढ़ रही है। जमीन बढ़ती नहीं, पर खानेवाले बढ़ रहे हैं। ऐसी स्थिति में गाँववालों को ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देना होगा। यदि ग्रामोद्योगों को सुव्यवस्थित ढंग से चलाया जाय तो बेकारी की समस्या मिटायी जा सकती है। ग्राम-सभा को ऐसे कामों का उत्तरदायित्व अपने पर लेना होगा। ग्रामोद्योगों से सभीका रक्षण हो, भूमि से सभी का पोषण हो और सही रीति से सभीका शिक्षण हो—इसकी योजना करना ग्राम-सभा के लिए कोई कठिन बात नहीं है। अगर ऐसी व्यवस्था हो जाती है तो आज जो लोग गाँवों से शहरों की ओर भाग रहे हैं, उन लोगों को गाँवों में ही रोका जा सकता है। ग्राम-सभा के सदस्य गाँव के सभी समझदार लोग हो सकते हैं। वे चाहें, वैसी अपनी व्यवस्था करने में स्वतन्त्र हैं। ग्रामदानी गाँवों में अमुक प्रकार की व्यवस्था हो की जाय, ऐसा हमारा कोई आग्रह नहीं है। हर गाँव अपनी सुविधा देखकर सर्वसम्मति से अपनी योजना बना ले। अगर आपके यहाँ इस दिशा में कुछ भी प्रयास किया जाय तो मध्य सौराष्ट्र में बहुत बड़ा काम हो सकता है। फिर उसका असर सम्पूर्ण सौराष्ट्र पर होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि ग्राम-स्वराज्य के लिए हमें उतना श्रम नहीं करना पड़ेगा, जितना कि देश का स्वराज्य पाने के लिए करना पड़ा। अब तो सिर्फ खेत में बीज बोनेभर के श्रम की आवश्यकता है। खेतों में बीज फेंक नहीं देते, पर बोते हैं, ताकि उससे हमें बीस गुनी फसल प्राप्त हो जाय, उसी तरह अपने पुरुषार्थ से गाँवों की श्री में वृद्धि करें। ● ● ●

अहमदाबाद १० दिसम्बर '५८

जिस दिन उत्तरदायित्व का भान होगा, उसी दिन असली स्वराज्य आयेगा

आज यूरोप के कितने ही देशों में गरीबी की समस्या नहीं, समृद्धि की समस्या है। वहाँ जनता या समाज के करने योग्य कुछ रह ही नहीं गया है। इस स्थिति को कुल मिलाकर अच्छा नहीं कहा जा सकता। जहाँ नागरिकों के लिए कुछ भी करने के अवसर न रह जायँ, वहाँ नागरिक जीवन का विकास कैसे होगा? नागरिकों के हाथों में सेवा के काम रहने चाहिए और सरकार को उनके सहयोग में लगना चाहिए। नागरिक से न होनेवाले काम सरकार अवश्य करे, पर अपना वैयक्तिक जीवन नागरिक स्वयं चलायें।

इन दिनों स्कूल और कॉलेज बढ़ गये हैं, किंतु लोगों में अध्ययन के प्रति प्रेम नहीं बढ़ा है। आज की परीक्षा-पद्धति से पहले जो प्रेम था, यह भी घटा है। यह ठीक नहीं है। देश में अध्ययन के प्रति प्रेम बढ़ना चाहिए। यूरोप के नागरिक एवं साधारण-से-साधारण नौकर भी अध्ययन किया करते हैं। कर्नल जेकब सेना के एक बहुत बड़े अधिकारी थे, फिर भी वे अध्ययन करते थे। उन्होंने बड़े ही चाव से संस्कृत का अध्ययन किया और उपनिषदों का 'वाक्य-कोष' बनाया। यूरोप के लोगों के अध्ययन-प्रेम को बताने के लिए ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जब कि हमारे यहाँके नागरिकों में वैसे उदाहरण ढूँढ़ने से भी कम ही मिलेंगे।। इससे यह तो स्पष्ट है कि सरकार द्वारा सभी काम कर लेने से हमारा गुण-विकास तो हो ही नहीं सकता। हमारे जीवन-पुष्प में सुगन्धि नहीं आ सकती। इसलिए हम लोग सुखी बनने की अपेक्षा गुणवान बनें।

लोकमान्य तिलक बहुत बार कहा करते थे कि अच्छा-से-अच्छा राज्य हो, पर वह स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता। स्वराज्य में नागरिकों को अपने उत्तरदायित्व का भान होता है और उसीसे गुण-विकास होता है। किसान अपने बैलों को खूब खिलाते-पिलाते एवं स्वस्थ रखते हैं, लेकिन बीज बोते समय उनकी राय नहीं लेते। कहा जाता है कि 'रूस में भी लोग सुखी हैं, पर स्वतन्त्र नहीं हैं'। वहाँके लोग स्वतन्त्र तो नहीं, पर सुखी हैं, इसका क्या अर्थ है? जहाँ लोगों को ठीक तरह से खाने-पीने को न मिलता हो, वहाँ उन्हें वह सुलभ कर दिया जाय तो लोगों को लगता है कि हम सुखी हैं। लेकिन हमारी संस्कृति खाने-पीने को विशेष महत्त्व नहीं देती है। यहाँ तो बुद्धि-विकास, गुण-विकास और मुक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। शरीर धर्म के लिए है। धर्मपालन के लिए ही शरीर को धारण किया जाता है। इसलिए शरीर-धारण के लिए आवश्यक अन्न और पोषक पदार्थ मिलने चाहिए। लेकिन यही अन्तिम प्राप्तव्य नहीं है। अन्तिम प्राप्तव्य तो ब्रह्म है। इसलिए विज्ञान और आनन्द के समन्वय से ही पूर्ण विकास होगा।

गुण-विकास की पगडंडियाँ पार करते समय आप गंभीरतापूर्वक यह विचार करें कि संपत्तिदान, भूदान, ग्रामदान आदि क्या है? इन कार्यक्रमों में हमारे करने योग्य कुछ है भी या नहीं? यदि कुछ भी करने योग्य है तो आप सोचें कि हम क्या कर सकते हैं?

[पूर्वांश अंक ३५-३६ में प्रकाशित है]

प्रार्थना-प्रवचन

लक्ष्मणगढ़ (सीकर) १६-३-'५९

कार्यकर्तागण राग-द्वेष से मुक्त होकर निष्ठापूर्वक काम करें !

आज मैं आप लोगों का ज्यादा समय नहीं लूँगा। काम-से-कम समय में अपने विचारों को प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

कभी-कभी हमारे एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव की दूरी १०-१२ मील होती है, लेकिन आज तो दोनों पड़ावों के बीच का अन्तर लगभग ८ मील ही था। ज्यादा दूरी होने से हम सुबह जल्दी ही अगले पड़ाव के लिए चल पड़ते हैं। पर जब दूरी कम होती है तो कुछ देरी से प्रस्थान करते हैं। आज प्रातः छह बजे हम लोग पिछले पड़ाव से चले। नौ बजे यहाँ पहुँच जायँगे—ऐसी हमें आशा थी। लेकिन वह आशा पूरी नहीं हुई। हम नौ बजे के बजाय पौने ग्यारह बजे यहाँ पहुँचे। पौने दो घंटे देरी हुई !

खेद-जनक घटना

यह देरी क्यों हुई ? इसलिए कि यहाँके जिम्मेवार लोगों में इस बात के लिए मतभेद रहा कि हमें किस रास्ते से इस गाँव में प्रवेश कराया जाय ? इतनी-सी एक बात में भी लोग एक-मत नहीं हो सके—यह कितनी खेदजनक घटना है। लोगों के एकमत हुए बिना हम गाँव में कैसे आ सकते थे ? आखिर उन्होंने पूरे पचपन मिनट के बाद यह फैसला किया कि हमें अमुक रास्ते से लाया जाय ! मैं उनके निर्देशानुसार पथ पर चला। लेकिन स्टेशन के पास पहुँचते ही फिर उसी बात को लेकर मतभेद शुरू हो गया। एक कहता था कि हमने जो तय किया है, उसके अनुसार यह नहीं हो रहा है और दूसरा कह रहा था कि जो तय हुआ है, ठीक उसीके अनुसार हम जा रहे हैं। जरा-सी बात के लिए वे दोनों पक्षवाले ऐसे लड़ रहे थे, जैसे किसी गंभीर समस्या को लेकर बड़े-बड़े राष्ट्र झगड़ा करते हैं।

पहले मुझसे एक गलती हो गयी कि जिस रास्ते से हमें जाने का तय हुआ था, उस रास्ते का मैंने नाम नहीं लिख लिया। अगर वैसा किया होता तो सम्भवतः दुबारा रुकने का प्रसंग नहीं आता। पर दूसरी मर्तबा भी रुकना पड़ा। एक बूढ़ा आदमी आपके गाँव में आ रहा था। उसके प्रातः नाश्ते में देरी हो रही थी। पर उस तरफ यहाँके लोगों का ध्यान ही नहीं था। वे तो सभी अपनी-अपनी जिद पर डटे हुए थे।

आठ साल में ऐसी घटना पहली बार हुई। इतने वर्षों से हम सतत घूमते रहे हैं। सम्मेलन आदि प्रसंगों के कारण हम वर्ष-भर में कहीं ५-१० दिन ठहरते हैं, बाकी तो सब दिन घूमते ही रहते हैं। इस प्रवास काल में आज का दिन चिरस्मरणीय बना रहेगा।

जिस द्वेष के कारण हिन्दुस्तान का इतिहास धूमिल रहा है, जिस द्वेष के कारण यहाँके राजा-महाराजा आपस में लड़ते रहे और मार खाते रहे हैं, जिस द्वेष के कारण हम लोग विदेशी हुकूमत के गुलाम बन गये, अफसोस है कि हमारे देश में वही द्वेष आज भी विद्यमान है। उसे देखकर हमें असह्य वेदना होती है, जिसे शब्दों में अभिव्यक्ति देना हमारे लिए असंभव है !

बहनें आगे बढ़ें !

यहाँ जो घूँघट लगाकर बहनें बैठी हैं, उन्हें सुबह भाइयों द्वारा होनेवाले उस अभद्र व्यवहार को देखकर कितनी लज्जा महसूस हुई होगी ? क्या वैसे समय में बहनों को आगे बढ़-कर भाइयों को बुरे कामों से नहीं रोकना चाहिए ? मुझे उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि वहीं स्टेशन के निकट बैठकर दिन काटा जाय और दूसरे दिन प्रातः रेलवे लाईन से आगे कूच कर दिया जाय। लेकिन उस समय मैंने सब्र की। फिर लोगों ने मुझे किस रास्ते गाँव में लाया जाय, इस संबंध में पुनः निर्णय किया। मैंने भी फिर से गलतफहमी न हो जाय, इसलिए उस करार पर तीन-चार व्यक्तियों से हस्ताक्षर करवा लिये। दो राष्ट्रों में लड़ाई हुई और उस पर करार हुआ। वही हाल हो गया। इस हालत को देखकर क्या बहनों को तब भी घर में ही बैठे रहना चाहिए ? उन्हें आगे आकर पुरुषों से पूछना चाहिए कि क्या अपने गाँव में आनेवाले एक सज्जन का स्वागत इसी प्रकार से किया जाता है ? क्या ऐसे ही आचरणों से स्वराज्य टिक सकेगा ?

इस देश में अनेक भाषाएँ हैं, अनेक पंथ हैं, अनेक धर्म हैं और अनेक समस्याएँ हैं। ऐसी हालत में यदि इसी प्रकार द्वेष बना रहा तो यह टिकनेवाला नहीं है।

प्रार्थना करके अब यह सभा समाप्त करूँगा। सभा की समाप्ति के बाद यदि आप चाहें तो 'गीता-प्रवचन' अवश्य ले जायँ। वह पुस्तक हर घर में रहनी चाहिए। मैं उस पुस्तक पर अपने हस्ताक्षर भी किया करता हूँ, यह आप लोग जानते ही हैं।

साथी कार्यकर्ताओं से

राजस्थान में साहित्य-प्रचार का काम अच्छी तरह से नहीं हो रहा है। मेरे साथ रहनेवाले लोग जनता तक पहुँचते नहीं हैं और न वे लोगों को कुछ समझाते ही हैं। वे आलस करते हैं। मेरे साथ कितने लोग हैं ? खाते समय तो काफी दिखाई पड़ते हैं, पर जनता तक पहुँचने के लिए कोई नहीं है ! सभी आलस करते हैं। यह एकदम गलत बात है। मैं आशा करता हूँ कि राजस्थान के कार्यकर्ता आलस्य छोड़ें तो बहुत काम हो सकता है। राजस्थान के लोग तैयार हैं। जनता की मनोभूमिका हमारे काम के अनुकूल है। ● ● ●

अनुक्रम

१. ग्राम-स्वराज्य की घोषणा करें !
जगभला ३ दिसम्बर '५८ पृ० २७७
२. सब समस्याओं का एकमात्र समाधान...
कुन्तासी २ दिसम्बर '५८ ,, २७८
३. जिस दिन उत्तरदायित्व का भान होगा...
अहमदाबाद १० दिसम्बर '५८ ,, २७९
४. कार्यकर्तागण राग-द्वेष से मुक्त होकर निष्ठापूर्वक काम करें !
लक्ष्मणगढ़ १६ मार्च '५९ ,, २८०

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।